'मास्टर' मणिमालायाः ७१ संख्यको मणिः (दर्शन विभागे ३)

ॐ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः-

तत्त्वबोधः

पं० श्रीवैजनाथशर्मविरचितया

सोदाहरण-भाषाटीकया

सहितः

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

मूल्य ।-)

'मास्टर' मणिमालायाः ७१ संख्यको मणिः (दर्शनविभागे ३)

❀ श्रीः ❀

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः—

तत्त्वबोधः

—:०❀०:—

इति जयपुर-राज्यान्तर्गत—नवलगढ़निवासिना

पण्डितश्रीबैजनाथशर्म्म—कृतया

सरलसोदाहरण–भाषाटीकया

समलङ्कृतः ।

—:❀:—

स च

काशीस्थ–संस्कृत बुकडिपो–इत्यस्याऽध्यक्षैः

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स इत्येतैः

स्वीये 'मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स' नाम्नि यन्त्रालये

मुद्रापयित्वा प्रकाशितः ।

—:❀:—

मूल्यम् ।–)

[ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा]

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनभूतं तत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः।

अर्थ---साधन चतुष्टय कहिये मोक्ष के जो साधन चार हैं उनकरके सम्पन्न यानी युक्त जो अधिकारी पुरुष हैं वे ही मोक्ष के साधक होकर तत्त्वविवेक के अधिकारी होते हैं। तत्त्वविवेक अर्थात् आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी इन पञ्चमहाभूतों के विषय अभिन्नरूप से प्रतीत होने वाला जो ब्रह्म, जगत का उपादान कारण है वही तत्त्वों की एकता से तथा माया के सङ्गी होने पर जीव भाव को प्राप्त होता है, उसका तथा पञ्चमहाभूतों का पृथक् ज्ञान जिस रीति के द्वारा हो उस रीति को इस तत्त्वबोध ग्रन्थ में वर्णन करेंगे।

शङ्का—साधनचतुष्टयं किम् ?

अर्थ—वह चारों साधन कौन से हैं ?

समाधान—नित्याऽनित्यवस्तुविवेकः ॥ १ ॥ इहामुत्रार्थफलभोगविरागः ॥ २ ॥ शमादिषट्कसम्पत्तिः ॥ ३ ॥ मुमुक्षुत्वं चेति ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रथम साधन का नाम नित्य और अनित्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना है। यह जब पूर्ण सिद्ध हो जाय तब दूसरा साधन करे, यानी इस लोक तथा परलोक इन दोनों के बीच जो २ पदार्थ हैं उनके भोगने में अनिच्छा

होना दूसरे साधन का काय है । अब तीसरे साधन के सिद्ध करने में शम, दम आदि जो छः पदार्थ हैं उनको ठीक सिद्ध करना तीसरा साधन है । जब यह तीनों साधन पूर्ण हो जाँय, तब मोक्ष की इच्छा करना चतुथ साधन का नाम है । इनमें एक भी कमजोर होगा तो चतुथ साधन सिद्ध न हो सकेगा, जैसा कि व्यासजी ने कहा है कि—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" यानी चारों साधनों को पूण करने के पश्चात् ब्रह्मेच्छा करना उचित है ।

शङ्का—**नित्याऽनित्यवस्तुविवेकः कः ?**

अर्थ—नित्य और अनित्य वस्तु का पृथक् २ ज्ञान क्या है ?

समाधान—**नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम् । अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ।**

अर्थः—नित्य अर्थात् तीनों कालों में सत्यस्वरूप रहने वाला केवल ब्रह्म है, उसके अतिरिक्त यह जो स्थावर जङ्गम रूप यावन्मात्र जगत है सो सम्पूर्ण अनित्य हैं यानी समय पाकर सब नष्ट हो जाता है, इसका मतलब यह है कि नित्य से प्रेम करता हुआ अनित्य की जरा भी इच्छा न करना यह प्रथम साधन सम्पूण साधनों की प्राप्ति का मूल कारण है ।

अब दूसरे साधन की क्या विधि होगी ? इसलिए पुनः पूछते हैं—

शङ्का—**विरागः कः ?**

अर्थः—विराग क्या वस्तु है ?

समाधान—**इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम् ॥ २ ॥**

अर्थः—इह शब्द का अर्थ यह है कि संसार के पदार्थों की इच्छा अथवा इस देह के लिए प्रत्येक वस्तुओं की इच्छा और स्वर्ग के भोगों के लिए अभिलाषारहित होना अर्थात् दोनों लोकों के विषय भोगों की इच्छाओं का त्याग ही विराग है।

जब दोनों साधन तय कर चुके तब तीसरे साधन को पूर्ण करने की इच्छा से पुनः शङ्का करते हैं—

प्रश्न—**शमादिसाधनसम्पत्तिः का ? ॥ ३ ॥**

अर्थः—शम आदि की साधनसम्पत्ति क्या है ?

उ०—**शमदमोपरतितितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति।**

अर्थः—शम १, दम २, उपरति ३, तितिक्षा ४, श्रद्धा ५ और समाधान ६, ये छः शमादि साधन सम्पत्ति कहलाते हैं।

जब इस प्रकार के छह नाम सुने, तब इच्छा होती है कि इन शब्दों का अर्थ क्या है ? इस गरज से पुनः शङ्काएँ की जाती हैं।

शङ्का—**शमः कः ?**

अर्थः—शम क्या चीज है ?

समाधान—**मनोनिग्रहः।**

अर्थः—मन को विषय वासनाओं से हटाकर एकाग्र करना इसका नाम शम है। मन को वश करने के उपाय भी हो सकते हैं जब कि उपरोक्त दोनों साधन पक्के हो जाते हैं।

जैसे मन में कोई पदार्थ खाने की इच्छा हुई तब पास में खरीदने के निमित्त द्रव्य न लेकर उस मुहल्ले में जाओ जिसमें कि इच्छित पदार्थ मौजूद हों, और उधर से दैनिक आया जाया करो, परन्तु खरीदो मत, फिर आपसे आप उन पदार्थों के खाने की इच्छा के बनिस्बत घृणा होने लगेगी। अगर मनकी तृप्ति के निमित्त पदार्थ खाओगे तो यह तृप्ति अग्नि में घृत का कार्य करेगी। इसलिये वासनाएँ जो मन में आती हैं उन्हें देखे, परन्तु भोगे नहीं, फिर आप से आप मन एकाग्र हो जायगा।

शङ्का--**दमः कः ?**

अर्थः--दम किसे कहते हैं ?

समाधान--**चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः** ।

अर्थः—नेत्र आदि जो बाह्य (बाहर की) ज्ञानेन्द्रियां उनको निग्रह (वश में) करना दम कहलाता है। यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकेगा जब कि मनको अपने वश कर चुकेंगे, क्योंकि ये ज्ञानेन्द्रियां बगैर मन की सहायता के किसी विषय भोगों को प्राप्त नहीं कर सकतीं। इसलिये प्रथम साधन को ठीक करके पश्चात् इस दूसरे साधन को पूरा करने की चेष्टा करो।

शङ्का--**उपरतिः का ?**

अर्थः—उपरति किसे कहते हैं ?

समाधान--**स्वधर्मानुष्ठानमेव** ।

अर्थः--स्व कहिये इस देह में निवास करते हुए अपने को पहिचानना ही इस शास्त्र में स्वधर्म है, उसी का अनुष्ठान अर्थात् चेतन साक्षी धर्म की निष्ठा करके शब्द-स्पर्श-आदि सम्पूर्ण विषयों से चित्त की वृत्ति को हटाना अर्थात् आत्मा का विचार करने में लीन होकर सब प्रकार के धर्म, लौकिक व्यवहारों से उदासीन होना, एवं उपरोक्त सम्पूर्ण साधन सिद्ध होने पर सामाजिक धर्म परित्याग करने में पाप का स्पर्श नहीं होता।

शङ्का--**तितिक्षा का ?**

अर्थः--तितिक्षा क्या है ?

समाधान--**शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् ।**

अर्थः--सरदी गरमी, सुख-दुःख तथा आदि द्वन्द से मान-अपमान, लाभ-अलाभ, जय-पराजय इन सब को समान समझना इसका नाम तितिक्षा है।

अगर एक गरीब मजदूर लोहार की दुकान में दिन भर उष्णता को सहता हुआ तथा कार्य की गलती होने पर अपमान को धैर्य से सहता है, तथा व्यापारी जन लाभ हानि को सहते हैं, शूरवीर लड़ाई में जय-पराजय को सहते हैं, तो क्या ये सम्पूर्णजन भी तितिक्षा के अधिकारी हैं ? तो इतने शब्दों का मूल उत्तर यही है कि उपरोक्त जन मायाश्रित अनित्य पदार्थों के इच्छुक होकर जगह २ उपरोक्त बातों का सामना करते हैं। इस लिये तितिक्षा के अधिकारी नहीं माने जा सकते, तितिक्षा

के अधिकारी वे ही बनेंगे जो कि दोनों साधनों के पश्चात् तीसरे साधन की तीन सीढ़ियों को तय कर चुका है, तथा तय करने में जो उपरोक्त घटनाओं का सामना करता है वह तितिक्षा का अधिकारी है ।

शङ्का—**श्रद्धा कीदृशी ?**

अर्थः—श्रद्धा किस प्रकार की होती है ?

समाधान—**गुरुवेदान्तवाक्ये विश्वासः श्रद्धा ।**

अर्थः—गुरु और वेदान्त शास्त्र के वाक्यों में विश्वास करना । जो गुरु वेदान्त शास्त्र के वाक्यों का यथार्थ उपदेश करते हैं उन पर विश्वास रखना श्रद्धा है ।

शङ्का—**समाधानं किम् ?**

अर्थः—समाधान क्या है ?

समाधान—**चित्तैकाग्रता का ?**

अर्थः—सावधान होकर निरन्तर एकान्त में निवास कर उपरोक्त गुरु के वेदान्त वाक्यों को ध्यान से सुन कर चित्त की वृत्तियों का दमन कर साक्षात् "अहं ब्रह्म" ऐसा निश्चय करना ही समाधान कहाता है । इस प्रकार से तीसरे साधन की छठी सीढ़ी पारकर चुकने के बाद चतुर्थ साधन में प्रवेश करें ।

जब तीनों साधनों को ध्यान से सुन चुके तब चतुर्थ साधन के सुनने की इच्छा से शङ्का करते हैं—

शङ्का—**मुमुक्षुत्वं किम् ?**

अर्थः--मुमुक्षुत्व क्या वस्तु है ?

समाधान—**मोक्षो मे भूयादितीच्छा ।**

अर्थः—मोक्ष अर्थात् (निखिलदुःखनिवृत्तिपुरस्सरं स्वात्मानन्दावाप्तिः) यानी सम्पूर्ण मायाश्रित दुःखों से निवृत्ति होकर, निरन्तर आत्मानन्द की प्राप्ति होकर, जन्म-मरणादि रूप जो संसार उससे मेरी मुक्ति हो जाय ऐसी इच्छा का नाम 'मुमुक्षुत्व' है। यह धारणा तभी होनी चाहिए जब कि उपरोक्त तीनों साधनों का कार्य सम्पन्न कर चुका हो। क्योंकि बगैर मार्ग को तय किये किसी स्थान में पहुँचना असम्भव है।

जब चारों साधन मनुष्य तय कर चुकता है तब इस संसार में जो तत्त्व सारांश है उसके जानने का अधिकारी होता है। जैसा कि—

एतत्साधनचतुष्टयम् ।

ततस्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवन्ति ।

अर्थः—यह जो हमने ऊपर चार साधन कहे, उन्हें यत्न करके सिद्ध करने के बाद, वह ज्ञानी पुरुष तत्त्व यानी इस संसार में निरंतर रहने वाला निर्मल तथा पञ्चमहाभूतों से अलग जो परमात्मा वह प्रत्येक रचना का करके किस भाँति से असंग रहता है, उस रहस्य के जानने का अधिकारी हो सकेगा।

शंका—**तत्त्वविवेकः कः ?**

अर्थः—तत्त्वविवेक क्या है ?

शंका—**आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति ।**

अर्थः—एक आत्मा सत्य है उससे भिन्न जितने भी दृश्यादृश्य पदार्थ हैं तथा नाम रूपात्मक द्वैत जगत् यह सम्पूर्ण मिथ्या है। यथा—"इदं सर्वं द्वैतजातमद्वितीये चिदानन्दात्मनि मायया कल्पितत्वात् मृषैव आत्मैवैकः परमार्थसत्यः सच्चिदानन्दाद्वयोऽहमस्मीति ज्ञानम्। तथाऽन्यदपि तत्त्वपदार्थयोरभेदगोचरान्तःकरणवृत्तित्वम्।" इस प्रकार का जो निश्चय है वही तत्त्व विवेक है।

अब इस शरीर में आत्मा किसे मानें? क्या आँख-कान-नाक-पैर अथवा-प्राणों को या हृदय को आत्मा मानें? इस प्रकार की शङ्काओं की निवृत्तियों के हेतु शङ्का करते हैं—

शङ्का—**आत्मा कः?**

अर्थः आत्मा किसे कहते हैं?

समाधान-**स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन् अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा।**

अर्थः—जिन इन्द्रियों के आनन्द को आत्मानन्द मान बैठे थे, वे सब भ्रम के कारण थे। आत्मा इन से अलग ही है। जैसे—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर से आत्मा को अलग जानो तथा पञ्चकोशों से भी अलग निवास करने वाला, और तीनों अवस्थाओं का साक्षी तथा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप होकर बाहर भीतर निवास करता है वही आत्मा है। जिसे ईश्वर और ब्रह्म भी कहते हैं।

उपरोक्त प्रमाण में तो आत्मा का शरीरादि अवयवों से अलग ही निवास कहा। तब पहले शरीर के भेदों को तथा कोशादिकों को जानने की इच्छासे पुनः शंकाएँ की जाती हैं—

शङ्का—**स्थूलशरीरं किम् ?**

अर्थ—स्थूल शरीर किसे कहते हैं ?

समाधान—**पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभोगायतनं शरीरम्, अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यतीति षड्विकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ।**

अर्थः—पञ्चीकृत† अर्थात् पञ्चीकरण किये हुये जो पञ्च महाभूत, तिनसे रचा हुआ। फिर कैसा है कि पुण्य व पाप रूपी कर्मों के साथ उत्पन्न होने वाला तथा उसी पुण्य व पाप रूपी कर्मों के फल, सुख दुःखादिकों के भोगने वाला यह स्थूल शरीर है। और 'अस्ति', कहिये इस समय में मौजूद है। और ('जायते') फिर भी होगा। होकर के यह क्या करता है ? 'वर्धते' दिन रात बढ़ा करता है। बढ़ता हुआ भी विशेषता यह रखता है कि हर समय एक रूप को धारण नहीं करता जैसे बाल्यावस्था में कैसी शक्ल रहती है, पश्चात् युवावस्था उससे भिन्न रूप धारण करती है, और वृद्धावस्था इन से भिन्नरूप धारण करती है, यहां

† परन्तु यहाँ पर यह शका हुई होगी कि पञ्चीकरण किसे कहते है ? इस शंका को हम आगे वर्णन करेंगे यहाँ प्रसङ्ग के बाहर की बात होती है।

नहीं, 'अपक्षीयते', यह स्थूल शरीर रूपी घट प्रतिक्षण क्षीण होता रहता है। और 'विनश्यति', क्षीण होते २ यहाँ तक क्षीण हो जाता है, कि एकदम नष्ट हो जाता है, फिर होकर फिर नष्ट हो जाता है, ऐसा यह षड् (छह) विकार वाला स्थूल शरीर है।

शङ्का—सूक्ष्मशरीरं किम् ?

अर्थः—सूक्ष्म शरीर क्या है ?

समाधान—अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभोगसाधनं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च प्राणादयः, मनश्चकं, बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः सह यस्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम्।

अर्थः—अपञ्चीकृत अर्थात् पञ्चीकरण से सम्बन्ध न रखनेवाला और सिर्फ पञ्चमहाभूतों के द्वारा निर्माण किया हुआ, और पुण्य व पाप रूपी कर्मों से उत्पन्न सुख दुःखादि जो भोग उनका साधन मात्र, फिर कैसा है कि इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। और पाँच प्राण हैं और एक मन है तथा एक बुद्धि इन्द्रिय है इस प्रकार से जो सत्रह कलाओं (मशीनों) के सहित जो स्थित हो वही सूक्ष्म शरीर है, सो यह प्रत्येक देहधारी के अन्दर व्याप्त है।

इसमें जो ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय कही वे कौन सी हैं ? इनका क्या कर्तव्य है ? इसलिये शङ्काएँ करते हैं—

शङ्का—पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि कानि ?

अर्थः—पञ्चज्ञानेन्द्रिय कौन हैं ?

समाधान—श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, रसना, घ्राणमिति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि ।

श्रोत्रस्य दिग्देवता, त्वचो वायुः, चक्षुषः सूर्यः, रसनाया वरुणः, घ्राणस्याश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवताः।

श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम्, त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्, चक्षुषो विषयः रूपग्रहणम्, रसनाया विषयो रसग्रहणम्, घ्राणस्य विषयो गन्धग्रहणमिति।

अर्थः—श्रोत्र (कान), त्वचा (चमड़ा), नेत्र (आँख), रसना (जिह्वा) और घ्राण (नाक) ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। प्रत्येक देवता का इस शरीर में निवास है—जैसे कानों के देवता दिशाएँ हैं, तथा त्वचा के देव वायु हैं, नेत्रों के देव सूर्य हैं, जिह्वा के देव वरुण हैं, नाक के देव अश्विनीकुमार हैं। अब इनके कर्तव्य वर्णन करते हैं—कानों का कर्तव्य है शब्द का बोध करना, चमड़े का कर्तव्य है कि स्पर्श करना, नेत्र का कार्य रूप को ग्रहण करना, जिह्वा का कार्य खट्टा मिट्ठादि रसों को ग्रहण करना, नाक का कर्तव्य है कि गन्ध को ग्रहण करना, इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के देवता तथा कर्तव्य वर्णन किया।

अब इन इन्द्रिय-जगत् का कर्तव्य क्या है ? तथा परस्पर में सम्बन्ध रखकर किस प्रकार अपना साम्राज्य बना रक्खा है उसी विषय पर दृष्टान्त कहते हैं—

उदाहरण—

यह तो आप जानते ही हैं कि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही यह शरीर सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को प्राप्त करता है परन्तु कैसे करता है ? एक दृष्टान्त है, एक कामी पुरुष बैठा था कि एकाएक किसी तरफ से मधुर छम २ की आवाज़ आई । तब इस शब्द को कानों ने सुनकर नेत्रों से कहा कि इस रूप को जरूर देखना चाहिये। फिर तो नेत्रों से न रहा गया उन्होंने शीघ्र ही कही हुई दिशा की तरफ देखना शुरू किया। जब वह कामिनी नजदीक आ गई तब उस रूप को देख प्रसन्न हुआ। उसी समय नेत्रों ने नाक से कहा कि इसमें कैसी बू है उसने झट से रोग की तरह चिकित्सा कर बतलाया कि अमुक इत्र की खुशबू है। फिर तो क्या था, त्वचा ने चाहा कि इसे शीघ्र स्पर्श करना चाहिए। जब स्पर्श कर लिया तब जिह्वेन्द्रिय ने रस ग्रहण करने की इच्छा से उस कामिनी के अधरों में लगा हुआ थूक रूपी रस को ग्रहण कर मन रूपी कामी पुरुष ने अपनी इच्छा पूर्ण की। इसी प्रकार यह परस्पर में कभी कोई आगे आती है, कभी कोई। इसी विषय का और दृष्टान्त कहें तो ग्रन्थ का विस्तार होता है, इस लिये अब आगे का कार्यारम्भ करते हैं।

शङ्का—**कर्मेन्द्रियाणि कानि ?**

समाधान—**वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थानीति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। वाचो देवता वह्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मृत्युः, उपस्थस्य प्रजापतिरिति**

कर्मेन्द्रियदेवताः । वाचो विषयो भाषणम्, पाण्योर्विषयो वस्तुग्रहणम्, पादयोर्विषयो गमनम्, पायोर्विषयो मलत्यागः, उपस्थस्य विषय आनन्द इति ।

अर्थ:—वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग-भग), यह पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। अब इनके देव कहते हैं-वाणी के देव अग्नि हैं, हाथों के देव इन्द्र हैं, पैरों के विष्णु हैं, गुदा के देवता मृत्यु (यमराज) हैं, लिङ्ग के अधिपति ब्रह्मा हैं, ये कर्मेन्द्रियों के देवता हैं। वाणी का कार्य बोलना, हाथों का कर्तव्य वस्तु का ग्रहण करना, पैरों का कर्तव्य चलना, गुदा का कार्य मल का त्याग करना, लिङ्ग का कार्य आनन्द करना (मैथुन से जो ज्ञात होता है) इस प्रकार से कर्मेन्द्रियों के देव तथा उनका कार्य वर्णन किया।

अब इन कर्मेन्द्रियों के देवताओं के होने का कारण कहते हैं। वाणी के देवता अग्नि कहा सो ठीक है क्योंकि वेद में भी कहा है कि "मुखादग्निरजायत" अग्नि का कर्तव्य जलाना है तो वाणी का कार्य भी किसी अशुद्ध कार्य को जलाकर शुद्ध का प्रकाश करना। हाथों का जो इन्द्र कहा सो भी ठीक; क्योंकि जैसे देवों में पराक्रमी इन्द्र है वैसे शरीर में पराक्रमी हाथ हैं। अब पैरों के स्थान में विष्णु का स्थान कहा; क्योंकि विष्णु का कर्तव्य पालन करना है, जो पालन करता है वह सम्पूर्ण दुःखों का सामना करते हुए भी दुःख नहीं मानता, वही हालत पैरों की हैं कि इस शरीर के सम्पूर्ण बोझ को लादे रहने पर भी

दुःख प्रगट नहीं करते क्योंकि इसमें तो विष्णु का निवास है, इसलिये ब्राह्मणों के चरणों में नमस्कार किया जाता है; एक तो विष्णु का निवास दूसरे ये लोग इन्हीं पैरों से घूम २ कर तीर्थों में भ्रमण कर जनता को धर्म मार्ग की तरफ ले जाते हैं। गुदा के जो मृत्यु (यमराज) कहा सो ठीक है, क्योंकि मृत्यु का कर्तव्य है कि जगत् का संशोधन करना तो गुदा का भी वही कार्य है, याने शरीर की सम्पूर्ण बीमारियों को साफ करते रहना इसके लिए वैद्य-डाक्टरों को पूछो कि अगर दस्त की कब्ज होने लगे तो कौन २ सी बीमारियाँ अपना घर बना लेती हैं इस लिये गुदा का देव मृत्यु ठीक ही है, जैसा देव वैसा पुजारी। तथा जननेन्द्रिय का जो देव ब्रह्मा कहा सो भी ठीक है क्योंकि सृष्टि का कर्ता ब्रह्मा है, तथा ब्रह्मा का निवास कमल पर कहा है। वही हालत लिंगेन्द्रिय की है जब गर्भाशय रूपी कमल पर इसका निवास होता है तो फिर कई रूपों से सृष्टि के करने में समर्थ होता है, जैसे कहा है "प्रजापतिश्चरति गर्भे०" इति श्रुतेश्च।

शङ्का—कारणशरीरं किम् ?

अर्थः—कारण शरीर किसे कहते हैं ?

समाधान—अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयस्य कारणमात्रं सत् स्वस्वरूपाज्ञानं निर्विकल्परूपं यदस्ति तत्कारणशरीरम्।

अर्थः---नहीं हो सकता निर्वाचन जिसका अर्थात् माया को सत्य कहें तो ज्ञान होने के बाद वह नष्ट न होनी चाहिये, अथवा उसे झूठी कहें तो संसार की उत्पत्ति उसके बगैर कैसे हुई ? इत्यादि शङ्का होने पर कहते हैं कि जैसे रस्सी अँधेरे में होने से सर्प का भय होता है परन्तु प्रकाश से देखने पर वह सर्प का भय जाता रहता है इसी प्रकार माया भी सत्य तथा मिथ्या रूप केवल अज्ञान रूपी अन्धकार के रहते मायाश्रित मिथ्या जगत सत्य माना जाता है, ज्ञानरूपी प्रकाश होने पर रज्जु रूप कल्पित सर्प का भय जाता रहता, है तथा तत्स्वरूप और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का कारण मात्र अर्थात् बीज और निज स्वरूप का अज्ञान तथा निर्विकल्प रूप जो है वही कारण शरीर है।

शङ्का—अवस्था त्रयं किम् ?

अर्थः---तीनों अवस्था कौनसी हैं ?

समाधान—जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः।

अर्थः—जाग्रत् १, स्वप्न २, और सुषुप्ति ३, ये तीन अवस्थाएँ हैं।

शङ्का---जाग्रदवस्था का ?

अर्थः— जाग्रत अवस्था किसे कहते हैं ?

समाधान---श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयैश्च ज्ञायत इति यत्सा जाग्रदवस्था। स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व इत्युच्यते।

अर्थः—कान इत्यादि पूर्वोक्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो शब्द, स्पर्शादि विषयों का भोग भोगा जाता है उसे जाग्रत् अवस्था कहते हैं, तथा स्थूल शरीर का अभिमानी जो आत्मा है वह विश्व कहलाता है, अर्थात् स्थूल भोगों का भोगनेवाला विश्वरूप आत्मा जाग्रत् अवस्था का साक्षी तथा उससे भिन्न है, क्योंकि अवस्था का तो परिवर्तन होता है परन्तु आत्मा निश्चल तथा चेतन रूप नित्य है।

शङ्का—स्वप्नावस्था का ?

अर्थः—स्वप्नावस्था किसे कहते हैं ?

समाधान—जाग्रदवस्थायां यद्दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था। सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्युच्यते।

अर्थः—जाग्रत् अवस्था के समय इन्द्रियों की सहायता से जो २ पदार्थ देखे तथा सुने व भोगे हैं उन्हीं की वासना मात्र निद्रा के समय दृष्टिगोचर होती है उसी को स्वप्नावस्था कहते हैं, यह स्वप्नावस्था सूक्ष्म शरीर में होती है, उस सूक्ष्म शरीर का अभिमानी आत्मा तैजस कहलाता है।

शङ्का—अतः सुषुप्त्यवस्था का ?

अर्थः—अच्छा, सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं ?

समाधान—अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्राऽनुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था। कारण-शरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते।

अर्थः—मैं कुछ भी नहीं जानता कि कौन हूँ तथा कहाँ पर शयन कर रहा हूँ परन्तु मेरे आश्रित इन्द्रियों के आनन्द (निद्रा) के समय का अनुभव किया इस प्रकार के अनुभव का नाम सुषुप्ति अवस्था है, इस सुषुप्ति अवस्था के समय में कारण शरीर और आनन्द मय कोश के आनन्दानुभव का अभिमानी आत्मा प्राज्ञ कहलाता है, यह प्राज्ञ अपने आनन्द स्वरूप के भान से रहित अज्ञान का साक्षी तथा इन्द्रियों की सहायता के बिना ही अपनी चैतन्य शक्ति द्वारा वासनामय विषयों के जानने तथा भोगने वाला है।

इस प्रकार के वचनों को सुन के, कि मैं कुछ भी नहीं जानता तथा कौन हूँ, कहां सोया तब तो शङ्का हुई होगी कि कहां तो जीव और ईश्वर की एकता और कहां इस प्रकार का अज्ञान। इस द्विविधा स्वरूप वाक्य को नहीं समझे, तो आपको उदाहरण द्वारा समझाते हैं।

(उदाहरण)

जैसे—

एक कमरे में एक प्रकाश की लाइट (बिजली) लगी हुई हो उसमें नीचे की तरफ से ठीक एक लम्बा काला कपड़ा लटका देने पर प्रकाश का दो हिस्सा हो जाता है और कपड़े की जगह

काला प्रकाश बन जाता है। यह दृष्टान्त है, इसे दार्ष्टान्त में घटाते हैं, कि कपड़े की परछाईं रहते हुए प्रकाश दो रूप में विभाजित होता है, एक मलिन, एक तेजमय। परन्तु अगर उस कपड़े को हटा दिया जाय तो सर्वत्र तेजमय प्रकाश दृष्टिगोचर होगा। उस हालत में वह प्रकाश दूसरे को नहीं जान सकता, क्योंकि अगर वह मलिन प्रकाश एक तरफ हो तो तेज प्रकाश को बोध होगा कि हम में प्रकाश ज्यादा है उसमें कम। परन्तु एक होने पर उसे अपने के सिवाय दूसरे का बोध हो नहीं सकता, तो याद रहे कि इस संसार में जितने आकार तथा नाम की वस्तुयें हैं, वे सब मायाश्रित हैं इसलिये इस सुषुप्ति अवस्था में कहा कि मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ क्योंकि यह अवस्था प्राज्ञ (पण्डित) याने निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्ति का पूर्ण लक्षण है। अगर ज्ञान होने के पश्चात भी यह कहें कि मैं अमुक हूँ, अमुक स्थान में सोया तो माया का सङ्गी होने का लक्षण बोध होता है। इसलिये कहा कि मैं नहीं जनता कि कौन हूँ।

शङ्का--**पञ्चकोशाः के ?**

अर्थः—पञ्चकोश कौन से हैं ?

समाधान--**अन्नमयः प्राणमयो मनोमयो विज्ञानमय आनन्दमयश्चेति।**

अथः—पहले कोश का नाम अन्नमय, दूसरे का प्राणमय, तीसरे का मनोमय, चौथे का विज्ञानमय, पाँचवें का आनन्दमय है।

कोशोत्पत्तिकारण ।

जैसे शरीर को प्रथम अन्न चाहिये, अन्न मिलने पर ही प्राण रह सकेंगे, प्राण रहने पर मन हर एक वस्तु का सङ्कल्प विकल्प करता है, उस वस्तु का निश्चय करना विज्ञान का कार्य है, विज्ञान होने पर आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये यह पञ्चकोश है ।

शङ्का--अन्नमयः कः ?

अर्थः--अन्नमय कोश किसे कहते हैं ?

समाधान—अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धिं प्राप्य अनुरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः कोशः स्थूलशरीरम् ।

अर्थः—अन्न के रस से उत्पन्न होकर तथा अन्न के रस से ही वृद्धि को प्राप्त हो पश्चात् वही अन्न दूसरा रूप धारण कर पृथ्वी में लीन हो जाता है, यह क्रिया अन्नमय कोश के द्वारा होती है तथा अन्नमय कोश जिसके आधार हैं उसे स्थूल शरीर कहते हैं ।

शङ्का—प्राणमयः कः ?

अर्थः--प्राणमय किसे कहते हैं ?

समाधान—प्राणादि पञ्च वायवः वागादीन्द्रिय-पञ्चकं प्राणमयः ।

अर्थः--प्राणादि पाँच वायु, (प्राण, अपान, व्यान, उदान,

समान) और पाँचों कर्मेन्द्रिय मिलकर प्राणमय कोश कहलाता है। और इसे ही क्रिया शक्ति कोश भी कह सकते हो क्योंकि शरीर के अन्दर जितनी क्रियायें होती हैं, वे सम्पूर्ण प्राणमय कोश से ही होती हैं।

शङ्का—मनोमयः कोशः कः ?

अर्थः—मनोमय कोश किसे कहते हैं ?

समाधान—मनश्च ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः।

अर्थः—एक मनेन्द्रिय तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रिय मिलकर मनोमय कोश कहलाता है। तथा इसी को इच्छाशक्ति कोश भी कहते हैं।

शङ्का—विज्ञानमयः कः ?

अर्थः—विज्ञानमय किसे कहते हैं ?

समाधान—बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः।

अर्थः—एक बुद्धि इन्द्रिय तथा पाँचों कर्ण आदि ज्ञानेन्द्रिय मिलकर विज्ञान मय कोश होता है, यह कोश प्रत्येक प्राणिमात्र को होता है क्योंकि इस विज्ञान मय कोश की सहायता द्वारा ही हम सम्पूर्ण पदार्थों का बोध करते हैं, जैसे विशेष बुद्धि के दौड़ाने पर विशेष बोध होता है और सामान्य दौड़ाने से सामान्य ज्ञान होता है। अगर कुछ भी बुद्धि से कार्य न करे

फिर भी ज्ञान रहता है परन्तु उतना दिव्य ज्ञान नहीं रहता।

शङ्का--आनन्दमयः कोशः कः ?

अर्थः—आनन्दमय कोश किसे कहते हैं ?

समाधान--एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलिनसत्त्वं प्रियादिवृत्तिसहितं सत् आनन्दमयः कोशः।

अर्थः—इसलिये यह जो कारण शरीर पञ्च महाभूत अविद्या स्वरूप है उसमें स्थित जो प्रियादि वृत्ति मलिन सत्त्व (रजोगुण, तमोगुण) से तिरस्कृत सत्त्वगुण, और प्रिय यानी इच्छानुकूल वस्तु के देखने से उत्पन्न हुआ सुख 'प्रिय' कहलाता है। और इच्छा के अनुसार वस्तु के प्राप्त होने से उत्पन्न हुआ जो सुख है उसे 'मोद' कहते हैं तथा अभीष्ट वस्तु के भोगने से उत्पन्न हुआ जो सुख उसे 'प्रमोद' कहते हैं, इस प्रकार यह कोश अधिक आनन्द का भोग स्थान होने से आनन्दमय कोश कहलाता है।

परन्तु आत्मा माया का सङ्गी होकर इन्हें अपना मान बैठता है इसी से सुख दुःखों को भोगता है पर यह सब आत्मा नहीं, यथा—

एतत्कोशपञ्चकं मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः, मदीयं मनश्च, मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते। तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कटककुण्डलगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं तथा

पञ्चकोशादिकं मदीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भवति।

अर्थः—हम अज्ञानावस्था में पड़कर भ्रान्ति से अपने को पञ्चकोशादिक रूप मान इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि मेरा शरीर है, यह मेरे प्राण हैं, यह मेरा मन है, यह मेरी बुद्धि है, यह मेरा ज्ञान है, परन्तु यह आत्मा पञ्चकोश रूप नहीं है, इस कारण पञ्चकोशादिकों को मेरा है इस तरह न जानना चाहिए क्योंकि जैसे धन-गहने-गृह-स्त्री-पुत्रादि अपने से भिन्न हैं, उसी प्रकार पञ्चकोशादिक आत्मारूप नहीं हैं, किन्तु आत्मा से भिन्न हैं इसलिये इन्हें अपना मानना वृथा है क्योंकि यह तो माया के रचे हुए हैं, समय पाकर नष्ट हो जायँगे परन्तु आत्मा तो नित्य है और माया का साक्षी है।

शङ्का—आत्मा तर्हि कः ?

अर्थः—तो आत्मा का स्वरूप क्या है ?

समाधान—सच्चिदानन्दस्वरूपः।

अर्थः—आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है ?

शङ्का—सत्किम् ?

अर्थः—सत् किसे कहते हैं ?

समाधान—कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्।

अर्थः—जो तीनों कालों (भूत-वर्तमान-भविष्य) में निवास करता हुआ एक रस से रहे उसे सत् कहते हैं।

शङ्का--चित्किम् ?

अर्थः—चित् किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानस्वरूपः ।

अर्थः—जो ज्ञानस्वरूप हैं, जैसे घट-पटादि पदार्थों का जानने वाला तथा अपना आधिपत्य जमाने वाला और चैतन्य स्वरूप ऐसा साक्षात् ज्ञान चित् पदार्थ का लक्षण है ।

शङ्का--आनन्दमयः कः ?

अर्थः—आनन्दमय किसे कहते हैं ?

समाधान—सुखस्वरूपः ।

अर्थः--दुःख रूपी प्रपञ्चों से रहित और सुख स्वरूप जो आनन्द वही ब्रह्म स्वरूप है, यथा--

एवं सच्चिदानन्दस्वरूपं स्वात्मानं विजानीयात् ।

अर्थः—इस प्रकार अपनी आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप जानते हुए सम्पूर्ण नाम रूपात्मक दृश्य जगत की क्रियाओं को मिथ्या जाने ।

अब पूर्वार्द्ध समाप्त होगा इसलिये मध्याह्न की सन्ध्या के अर्थ हम सबों को भगवत्-गान प्रेम से गाना चाहिये ।

गाना

तुम हीं घनश्याम राम, तुम हीं बनवारी ।
तुमहीं हो कच्छ मच्छ, तुमही गिरधारी ॥१॥तुमही०॥
विश्व रूप अपनो जान, अपने में विश्व मान ।

तत्त्व पुष्प पंच जान—माया फुलवारी ॥२॥ तुम०
इन्द्रिय दस बखान, पञ्च कर्म पञ्च ज्ञान ।
मस्तक में मन को ठान-बुद्धि बिस्तारी ॥३॥ तुम०
माया सङ्ग जीव होय, जानत है भेद दोय ।
भोगत है कर्म जोय—लिप्सा अति भारी ॥४॥ तुम०
योगी जन करत ध्यान, मुनिना/सह करत गान ।
कामिनी की तिरछी तान-छोड़ दे "त्रिशूरी" ॥५॥

अब इस विषय को थोड़ी देर के लिये बन्द कर आराम करें, क्योंकि पूर्वार्ध में कई प्रकार की शङ्का समाधान पढ़ते सुनते चित्त ऊब गया होगा, परन्तु इसके उत्तरार्ध में सृष्टि की उत्पत्ति तथा जीवेश्वर का एकत्व होकर भी किस प्रकार भिन्न प्रतीत होता है, तथा माया किसे कहते हैं ? तथा कैसे निर्माण हुई ? तथा शरीर को सुख-दुःख क्यों भोगना पड़ता है ? इत्यादि का उल्लेख होगा इसलिये यहाँ विश्राम करना ठीक है । ॐ शान्तिः ३

इति जयपुरराज्यान्तर्गत-नवलगढ़-निवासि-काशीस्थ-
श्रीचन्द्रमहाविद्यालयसामुद्रिक-शास्त्राध्यापक-
पण्डित-श्रीबैजनाथशर्मकृतसोदाहरण-
सरलार्थ-सहित-तत्त्वबोध-टीकायां
पूर्वार्धः समाप्तः ।

ॐ शान्तिः ३ ।

—:•:—

अथ तत्त्वबोध उत्तरार्धः प्रारम्भः

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

अर्थः—जो परम दुर्लभ नर देह रूपी दृढ़ नौका को पाकर तथा गुरु रूपी कर्णधार और ईश्वर कृपा रूपी अनुकूल वायु पाकर भी जो प्राणी इस भवसागर से पार न हो, वह आत्म-हत्या का भागी होता है।

अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः।

अर्थ—अब २४ तत्त्वों के उत्पत्ति का वर्णन करेंगे।

ब्रह्माश्रया सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति, तत आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोस्तेजः, तेजस आपः, अद्भ्यः पृथिवीम्।

अर्थः—ब्रह्म ने सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण-इन तीनों को समान भाग मिलाकर माया को निर्माण किया, पश्चात् आकाश निर्माण किया, आकाश तत्त्व से वायु को और वायु तत्त्व से अग्नि को तथा अग्नि तत्त्व से जल को उत्पन्न किया

फिर जल से पृथ्वी को निर्माण किया, परन्तु इन सब को अपने आधीन रखा।

परन्तु सांख्यमतावलम्बी पुरुष इसे (माया को) मूल प्रकृति और अव्याकृत तथा प्रधान भी कहते हैं, जैसा कि कहा है "यदकर्तृसांख्या" जो ईश्वर को अकर्ता कहते हैं पर यह मायाश्रित अज्ञानावस्था का द्योतक है।

सात्त्विकांशात् पञ्चज्ञानेन्द्रियोत्पत्तिः—

एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य
सात्त्विकांशाच्छ्रोत्रेन्द्रियं सम्भूतम्,
वायोः सात्त्विकांशात्त्वगिन्द्रियं सम्भूतम्,
अग्नेः सात्त्विकांशाच्चक्षुरिन्द्रियं सम्भूतम्,
जलस्य सात्त्विकांशाद्रसनेन्द्रियं सम्भूतम्,
पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेन्द्रियं सम्भूतम्,
एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टि सात्त्विकांशा-
न्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तान्तःकरणानि सम्भूतानि।

अर्थ—इन पाँचों तत्वों के मध्य से प्रथम आकाश तत्व के सात्विक अंश से कान इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई, पश्चात् वायु तत्त्व के सात्त्विक अंश से त्वचा (चमड़ा) इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई, अग्नि तत्त्व के सात्विक अंश से रसना (जीभ) इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई, पश्चात् पृथिवी तत्त्व के सात्त्विक अंश से घ्राण

(वाक्) इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई, जब इन पाँचों तत्त्वों के सात्त्विक अंश से पृथक् २ कर्म करने वाली पाँच ज्ञानेन्द्रिय निर्माण कर चुके तब इन पाँचों तत्त्वों के सात्त्विक अंशों को इकट्ठा किया तब मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त और अन्तःकरण की उत्पत्ति हुई। आप पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के तो कार्य जानते ही हैं परन्तु यहाँ सात्त्विक अंश से मन-बुद्धि-अहङ्कार-चित्त और अन्तःकरण उत्पन्न हुये इनके कार्य क्या हैं तथा कौन २ देवता हैं, उनको प्रथम वर्णन करते हैं।

सङ्कल्प-विकल्पात्मकं मनः, निश्चया-
त्मिका बुद्धिः, अहंकर्ता अहंकारः, चिन्तन-
कर्तृ चित्तम्, मनसो देवता चन्द्रमाः,
बुद्धेर्ब्रह्मा, अहङ्कारस्य रुद्रः, चित्तस्य वासुदेवः।

अर्थः—सङ्कल्प, विकल्प (करूँ या न करूँ, जाऊँ कि न जाऊँ) इत्यादि कार्य मन के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु बुद्धि इन्द्रिय द्वारा यह कार्य जरूर करना चाहिये ऐसा निश्चय होता है, और मैं हूँ, यह मैंने बताया, मेरा है ऐसा ज्ञान का नाम अहङ्कार है, तथा प्रत्येक वस्तु को स्मरण (याद) करने वाला चित्त है, अब इनके देवता वर्णन किये जाते हैं कि मन इन्द्रिय का देव चन्द्रमा है, बुद्धि इन्द्रिय का देव ब्रह्मा है, अहङ्कार इन्द्रिय का देव रुद्र (महादेव) हैं, और चित्त इन्द्रिय का देव वासुदेव (विष्णु) हैं। इस प्रकार आकाशादि पञ्च भूतों

के सात्त्विक अंशों से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मनादि चार अन्तःकरण की वृत्तियाँ यह ९ नौ पदार्थ उत्पन्न हुये।

राजसांशात् पञ्च कर्मेन्द्रियोत्पत्तिः।

एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य राजसांशात् वागिन्द्रियं सम्भूतम्। वायोः राजसांशात् पाणीन्द्रियं सम्भूतम्, वह्नेः राजसांशात् पादेन्द्रियं सम्भूतम्॥ जलस्य राजसांशात् उपस्थेन्द्रियं सम्भूतम्। पृथिव्या राजसांशात् गुदेन्द्रियं सम्भूतम्॥ एतेषां समष्टिराजसांशात् पञ्चप्राणाः सम्भूताः।

अर्थः—इन पांचों तत्त्वों के बीच से प्रथम आकाश के राजस (रजोगुण) अंश से वाक् (वाणी) इन्द्रिय उत्पन्न हुई, पश्चात् वायु तत्त्व के रजोगुण से हाथ उत्पन्न हुये फिर अग्नि तत्त्व के रजोगुण से पैर उत्पन्न हुए और जल तत्त्व के राजस अंश से जननेन्द्रिय उत्पन्न हुई, पश्चात् पृथिवी तत्त्व के राजस अंश से गुदेन्द्रिय उत्पन्न हुई इसके बाद इन पांचों तत्त्वों के रजोगुणों को मिलाया तब पांचो प्राणों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पांच कर्मेन्द्रिय और पांच प्राणों को मिलाया, तब १० दश तत्त्व पञ्चमहाभूतों के राजस अंश से उत्पन्न हुए। सात्त्विक अंश के ९ और राजस अंश के १० इन दोनों का योग १९ उन्नीस तत्त्वों की उत्पत्ति हुई।

हमने पूर्वार्ध में कहा था कि पञ्चीकरण आगे कहेंगे सो यहाँ वर्णन करते हैं—

एतेषां पञ्चतत्त्वानां तामसांशात्
पञ्चीकृत-पञ्चतत्त्वानि भवन्ति ।

अर्थ—इन पांचों तत्त्वों के तामस (तमोगुण) अंश से पञ्चीकृत अर्थात् पञ्चीकरण किये हुए पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए ।

शङ्का--**पञ्चीकरणं कथमिति चेत् ?**

अर्थ—यदि आप कहो कि पञ्चीकरण किसे कहते हैं ?

समाधान—**एतेषां पञ्चमहाभूतानां तामसांशस्वरूपमेकैकं भूतं द्विधा विभज्य एकमेकमर्द्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्याऽपरमपरमर्द्धं चतुर्धा विभज्य स्वार्धमन्येष्वर्धेषु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं कार्यं, तदा पञ्चीकरणं भवति। एतेभ्यः पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भवति, एवं पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं सम्भूतम् ॥**

अर्थ--तो यह जो पञ्चमहाभूत हैं इनके तमाम (तमोगुण) अंश को निकाल पृथक् २ स्थापना करे पश्चात् इनके आधे २ टुकड़े कर अलग २ रक्खे, और एक तरफ इन आधे किये हुये

टुकड़ों में से एक एक टुकड़े के चार २ हिस्से करके रक्खे और एक टुकड़े को साबूत रहने दे, फिर जो साबूत टुकड़ा है उसमें अपने से अन्य तत्त्वों के आधे के चार २ जो टुकड़े किये थे उनमें से एक टुकड़ा और एक वह टुकड़ा जो पञ्चतत्वों के तमोगुण के आधे कर रक्खे थे, इन दोनों को मिलाने से पञ्चीकरण होता है, अर्थात् इस पञ्चीकरण के करने में एक एक महाभूत का अपना आधा भाग और आधे में अपने से अन्य चारों भूतों के चार भाग मिलाने पर पञ्चीकरण होता है।

इस विषय को लेकर श्री व्यासजी ने भी कहा है कि—"वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः" यानी प्रत्येक महाभूत की अधिकता से यह पृथिवी जल-अग्नि-वायु-आकाशादि का व्यवहार होता है, और इन्हीं पञ्चमहाभूतों के पञ्चीकरण से स्थूल शरीर बनता है, इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, यानी आप जो समझते हैं कि इस शरीर के अलावा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति में बहुत विलम्ब तथा कठिनता पड़ी होगी, सो नहीं है जिस प्रकार पञ्च महाभूतों से पिण्ड उत्पन्न होता है उसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी उत्पन्न होता है, इस कारण पिण्ड (शरीर) ब्रह्माड (सम्पूर्ण विश्व) की एकता जानो। यथा—

स्थूलशरीराभिमानी जोवनामकं
ब्रह्म प्रतिबिम्बं भवति, स एव जीवः
प्रकृत्या स्वस्मादीश्वरभिन्नत्वेन

जानाति, अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव इत्युच्यते ।

अर्थः—इस स्थूल शरीर का अभिमानी जो जीव है वह ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, आप कहो कि प्रतिबिम्ब किसे कहते हैं ? तो सुनो "तदधीनत्वे सति तत्सदृशत्वम् ?" और भी कहा है कि उपा-(धिनिमित्तस्वप्रतियोगिकव्याप्यवृत्तिभेदकत्वे सत्युपाधिपरिच्छिन्नत्वम्)-ऽयन्तर्गतत्वे सति औपाधिकपरिच्छेद-शून्यत्वे सति बहिर्ऽस्थतस्वरूपकत्वम् । घटाकाशादिवारणाय द्वितीयम्, दर्पणाद्यन्तर्गततदवयववारणाय तृतीयमिति रत्नावल्याम् ।

प्रतिबिम्ब उसे कहते हैं जो एक ही रूप से दो का बोध हो । जैसे सूर्य को दर्पण में देखने पर दूसरे का बोध होता है परन्तु सूर्य एक ही है, इसी प्रकार ब्रह्म भी पिण्ड (शरीर) में निवास करता हुआ प्रकृति कहिये अपने स्वभाव से ब्रह्म का भिन्न रूप जानता है और वही आत्मा अविद्या रूप उपाधि करके जीव कहलाता है ।

उदाहरण—

जैसे—एक दीपक और एक घड़ा लाओ । पश्चात् दीये को जलाकर ऊपर उस घड़े को औंधा रख उसके चारों तरफ पाँच छेद करके देखा एक दीपक का प्रकाश पाँच भागों में बँटकर अलग २ प्रकाश करता है, अगर उस घोड़े को दीपक के ऊपर से हटा लिया जाय तो वह प्रकाश जो पांच हिस्सों में प्रकाश करता था वह बिम्बभूत होकर घट

(घड़ा के) स्वरूप हो जाता है, उसी प्रकार माया नष्ट होने पर जीव भी ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है, और ज्ञान होने से पहले माया के वशीभूत होने के कारण अपने को ईश्वर से भिन्न जानता है, अर्थात् माया के जो कार्य स्थूल और सूक्ष्म दो शरीर उनके वशीभूत होने से विषय भोगों के आनन्द के सुख की इच्छा करता हुआ, अनेक प्रकार के कर्मों को करता है, और उन कर्मों के फलस्वरूप जो स्वर्ग नरकादि के सुख दुःख तिनको भोगता है, परन्तु वह वास्तव में "सच्चिदानन्द" आत्मस्वरूप है, फिर भी अविद्या रूप उपाधि से जीव आत्मा कहलाता है ।

मायोपाधिः सन् ईश्वर इत्युच्यते । एवमुपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत् पर्यन्तं तिष्ठति तावत् पर्यन्तं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते, तस्मात् कारणात् न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः कार्या ।

अर्थः—हम माया की उपाधि (जब तक प्रकृति को सत्य मानते हैं,) से अपने से बाहर ईश्वर नाम से प्रार्थना किया करते हैं, परन्तु वास्तविक में जो परमात्मा है वह जीव और ईश्वर की उपाधि से रहित होकर, शुद्ध चैतन्य तथा स्वप्रकाश स्वरूप है, इस प्रकार उपाधि (माया संगी) के साथ जब तक मनुष्य को जीव और ईश्वर में भेद (अलग २) बुद्धि रहती है तब तक जन्म लेना और मरना इत्यादि सुख दुःख रूपी जो

संसार उससे छुटकारा नहीं पा सकता, इस लिये अगर संसार से मुक्त होने की इच्छा है तो मित्र जीव और ईश्वर में जो भेद बुद्धि बनी हुई है उसे जल्द ही त्याग करके निज रूप को देखो कि हमारे से बाहर ईश्वर कहाँ है ?

जब इतना सुना कि हम हीं ब्रह्म हैं फिर भी संसार का दुःख भोगते हैं सो क्यों ? अगर देह में ब्रह्म का निवास मानते हैं तब यह शङ्का होती है कि देह अहङ्कार युक्त है और ईश्वर अहङ्कार से रहित है तथा जीव पिण्ड में निवास करता है और ईश्वर सर्वत्र विराजमान है तब एक कैसे ? इसलिये यह भ्रम दूर हो इसी ग़रज से पुनः शङ्का करते हैं—

शङ्का—ननु साहङ्कारस्य किञ्चिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहङ्कारस्य सर्वज्ञस्येश्वरस्य तत्त्वमसि महावाक्यात् कथमभेदबुद्धिः स्यादुभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् ।

अर्थः—यह देह तो अहंकार के सहित तथा अल्पज्ञ है क्योंकि यह जीव विश्व की सम्पूर्ण क्रियाओं को नहीं जानता इस लिये अल्पज्ञ है तथा मैंने किया है कि मेरा है इत्यादि अहंकार युक्त है, और ईश्वर अहंकार से रहित तथा सर्व-व्यापक होता हुआ सम्पूर्ण कार्यों को जानता है, तब एक कैसे होंगे ? यही नहीं, शास्त्र के जो वचन तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों के द्वारा अभेद बुद्धि अर्थात् दोनों को एक माने ऐसा तो कदापि न हो

सकेगा, क्योंकि अन्धकार और सूर्य एक कदापि नहीं होता, अन्धकार का धर्म है अन्धेरा करना, और सूर्य का धर्म है कि अन्धकार को नष्ट कर अपना प्रकाश करना, इसी प्रकार विरुद्ध धर्म वाले जीव और ईश्वर किस प्रकार एक हो सकते हैं, जब कि जीव अल्पज्ञ तथा अहंकार है और ईश्वर अहंकार से रहित और सर्वज्ञ है तो कहो कैसे एक होगा ?

समाधान—इति चेन्न, स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानी त्वम्पदवाच्यार्थमुपाधिविनिर्मुक्तं समाधिदशासम्पन्नं शुद्धं चैतन्यं त्वम्पदलक्ष्यार्थः।

अर्थः—यह शङ्का ठीक है परन्तु जैसा आप समझते हैं वैसा अर्थ नहीं है, यथार्थ में जीव और ईश्वर के बीच जो भेद मालूम होता है वह उपाधि करके मालूम होता है, परन्तु यह भेद है नहीं, और जो 'तत्त्वमसि' महावाक्य को कहकर भिन्नता प्रगट की उसकी निवृत्ति हेतु 'तत्त्वमसि' इस वचन से ही जीव और ईश्वर की अभिन्नता सिद्ध कर कहते हैं।

उदाहरण—

जैसे "तत्त्वमसि" इस महावाक्य के तीन पद हैं तथा पहला तत्, दूसरा त्वम्, तीसरा असि, इन तीनों के अर्थ भी सामान्य रीति से तीन होने चाहिये तथा तत्—वह ईश्वर, त्वम्—तू जीव ही, असि है, अर्थात् हे जीव! वह ईश्वर तूँ ही है।

अब दूसरा अर्थ जो कि अपने में विशेषता रखता है उसे भी

दर्शाते हैं। जैसे तत् पद के दो अर्थ हैं एक तो (वाच्य) बोलने को दूसरा लक्ष्य को। ऐसे ही त्वम्पद के भी दो अर्थ होते हैं, जैसे कि—एक शिकारी शिकार करने गया तो बोलने को तो हरिन वाच्य अर्थ है और उसका मांसादि लक्ष्य के अर्थ है। तथा घट पद का वाच्य अर्थ तो "काम्बुग्रीवादि विशिष्टत्व" यानी घड़ा गोलाकार और ग्रीवादि युक्त है, परन्तु इसका लक्ष्य यानी मूल कारण मिट्टी है, उसी तरह "तत्त्वमसि" इस महावाक्य के तत् और त्वम् पद का वाच्य अर्थ, तत्=माया, त्वम्=अविद्या का सम्बन्ध वाला है, परन्तु लक्ष्यार्थ माया तथा अविद्या से रहित शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है, और स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों का अभिमानी त्वम् पद का वाच्यार्थ है, और उपाधि शून्य और समाधिदशा को प्राप्त शुद्ध चैतन्य त्वम्पद का लक्ष्यार्थ है क्योंकि यह महावाक्य बन्धन से छुड़ाने के हेतु हैं, न कि इस संसार में फँसने के लिये हैं। इस लिये इस भेद बुद्धि को त्यागने के लिये माया का परित्याग करो तभी ईश्वर का दर्शन हो सकेगा।

आपकी शङ्का इस तरह निवृत्ति करके फिर शुद्ध ज्ञान के निमित्त "तत्त्वमसि" महावाक्य का अर्थ कहते हैं तथा जीव और ईश्वर को एक दृष्टि से व्यवहार करो इसका अनुमोदन करते हैं।

एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरस्तत्पदवाच्यार्थः उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः। एवञ्च जीवेश्वरयोश्चैतन्यरूपेणाऽभेदे बाधकाभावः।

अर्थः—इस प्रकार जो ऊपर कहा गया है उसका पुनः

समर्थन करते हैं कि सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट, यानी सर्वज्ञ आदि विशेषणों करके युक्त जो ईश्वर है वह तत् पद के वाच्यार्थ है और जो उपाधि शून्य (माया से रहित) अर्थात् सर्वज्ञ आदि विशेषणों से शून्य (यानी वह सर्वज्ञ है और हम नहीं-इत्यादि जो मायाश्रित ज्ञान उससे रहित) है तथा शुद्ध चैतन्य है, सो तत् पद का लक्ष्यार्थ है, इस प्रकार से जीव और ईश्वर का चैतन्य स्वरूप करके अभेद होने में कोई बाधा नजर नहीं आती इसलिये चैतन्य स्वरूप करके जीव और ईश्वर में कुछ भेद नहीं है अर्थात् जीव भी चैतन्य, ईश्वर भी चैतन्य है किन्तु विशेषता यही है कि जीव मायाश्रित रहने का नाम है, और ईश्वर माया रहित होने का लक्ष है इससे अज्ञान को हटा कर ज्ञानी बनो फिर देखो कि यह विराट् रूप अपना ही स्वरूप है ।

एवं च वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्पन्ना ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ।

अर्थः--इस तरह से वेदान्त वाक्यों तथा सद्गुरु के उपदेशों से जिन प्राणियों की सम्पूर्ण जगत् में ब्रह्मबुद्धि उत्पन्न हो जाती है अर्थात् सर्वत्र सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही देखते हैं वे पुरुष जीवन्मुक्त की श्रेणी को प्राप्त होकर आनन्द का अनुभव करते हैं । जैसा कि तुलसीदासजी ने भी कहा है—

सियाराम मय सब जग जानी ।
करौं प्रणाम जोरि युग पानी ॥

अब यह शङ्का फिर होती है कि जीवन मुक्त के क्या लक्षण हैं उसे जानने की इच्छा से पुनः शंका करते हैं।

शङ्का--ननु जीवन्मुक्तः कः ?

अर्थ—जीवनमुक्त किसे कहते हैं ?

समाधान –यथा देहोऽहं ब्राह्मणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढ़निश्चयस्तथा नाऽहं ब्राह्मणो, न शूद्रो, न पुरुषः, किन्त्वसङ्गः, सच्चिदानन्दस्वरूपः, स्वप्रकाशः, सर्वान्तर्यामी चिदाकाशरूपोऽस्मीति दृढ़निश्चयरूपापरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः।

अर्थः—जैसे आज किसी नवीन सम्प्रदाय वाले से पूछो कि आप कौन जाति के हैं ? तब वह हँसकर कहता है कि मैं तो मनुष्य हूँ। परन्तु यह भी बन्धन का कारण है जैसा कि अन्य जातियाँ हैं। शास्त्र साफ कह रहा है कि ईश्वर के घर जाति नहीं मानी जाती। परन्तु कब नहीं मानी जाती उसी के लिये उपरोक्त ज्ञान वर्णन किया था। जब वह पूर्ण प्राप्त हो चुका तब जातियाँ तथा बाहरी मूर्ति पूजादि बन्धन तथा भ्रम का कारण है अन्यथा मानना जरूरी है। अब उपरोक्त प्रमाणों की तरफ झुकते हैं, कि मैं देह रूप हूँ, या पुरुष हूँ, अथवा मैं ब्राह्मण हूँ, तथा शूद्र हूँ, ऐसा जो दृढ़ निश्चय है यह बन्धन

है, इनसे मुक्त के लक्षण वर्णन करते हैं, यथा—न तो मैं ब्राह्मण हूँ, और न मैं शूद्र हूँ, और न मैं पुरुष हूँ, किन्तु असंग (देहादि प्रपंच समूह के संसर्ग से रहित) और सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ तथा अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान हूँ, दूसरा प्रकाश है ही नहीं, तथा सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में निवास कर देह-इन्द्रियादि की प्रेरणा करने वाला हूँ और चिदाकाश स्वरूप हूँ यानी सबसे अलग रहता हुआ सम्पूर्ण प्राणियों के बाहर और भीतर व्यापक हूँ ऐसा जो दृढ़ निश्चय रूप अपरोक्ष ज्ञान जब होता है तब जीवन्मुक्त कहलाता है।

परन्तु इसमें कहा कि अपरोक्ष ज्ञान वाला जीवन्मुक्त होता है तो पूछना चाहते हैं कि अपरोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

शङ्का—अपरोक्षज्ञानः कः ?

अर्थः—अपरोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

समाधान—ब्रह्मैवाऽहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्मबन्धनविनिर्मुक्तः स्यात् ।

अर्थः—मैं सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हूँ इस प्रकार के अपरोक्ष अर्थात् साक्षात्कार किये हुए ज्ञान से पुरुष सम्पूर्ण कर्म-बन्धनों करके मुक्त हो जाता है।

जब अपरोक्ष समझ गये तब इसमें कहा कि सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है तो शङ्का होती है कि क्या कर्म भी कई प्रकार के होते हैं ?

शङ्का--कर्माणि कतिविधानि सन्ति ?

अर्थः—कर्म कितने प्रकार होते हैं ?

समाधान--आगामि-सञ्चित-प्रारब्धभेदेन त्रिविधानि सन्ति ।

अर्थः--कर्म तीन प्रकार के होते हैं, यथा (१) आगामी, (२) सञ्चित और (३) प्रारब्ध ।

शंका—आगामि कर्म किम् ?

अर्थः--आगामी कर्म किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्य-पापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते ।

अर्थः--मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ ऐसे ज्ञान की उत्पत्ति होने के बाद ज्ञानी पुरुष इस देह करके जो २ पुण्य व पाप रूपी कर्म करता है वह आगामी कर्म कहलाता है ।

शंका--सञ्चितं कर्म किम् ?

अर्थः—संचित कर्म किसे कहते हैं ?

समाधान--अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सत् यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्सञ्चितं ज्ञेयम् ।

अर्थः—असंख्य जन्मों के किये हुए जो कर्म जीवात्मा के साथ स्थित होते हैं उन्हें संचित कर्म जानना चाहिये ।

शंका—प्रारब्धं कर्म किम् ?

अर्थः—प्रारब्ध कर्म कौन है ?

समाधान—इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एवं सुख-दुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्टं भवति, प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥

अर्थः—पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य व पाप रूप कर्मों के फल स्वरूप सुखदुःख का जो इस जन्म में भोग है वही प्रारब्ध कर्म कहलाता है । जो स्थूल शरीर के द्वारा सुख दुःख भोगे जाते हैं वह प्रारब्ध कर्म तो भोगने से ही नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा निश्चय समझो । क्योंकि

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।

अर्थात् पूर्व जन्म के किए हुए शुभ वा अशुभ कर्म हमें अवश्य ही भोगने पड़ेंगे । क्योंकि बिना भोगे करोड़ों कल्पों (महाप्रलयों) में भी कर्म नष्ट नहीं होते । इसलिये मूर्ख (मायाश्रित) जब दुःख को देख दुःखी और सुख में अहंकार युक्त हो अनर्थ कर्मों को संचित करते हैं, और ज्ञानी पुरुष

दुःखों पर ध्यान न देकर निरन्तर आत्मानन्द अपने प्रकाश की छटा को देखता हुआ मग्न रहा करता है।

ज्ञानी पुरुष को कर्मों का भोग--जो कि संचित कर्म हैं तथा आगामी कर्म हैं सो--नहीं भोगने पड़ते पर प्रारब्ध कर्म भोगने पड़ते हैं। ज्ञानी के कर्म कैसे नष्ट हो जाते हैं? उसको यहाँ वर्णन करते हैं।

सञ्चितं कर्म ब्रह्मैवाऽहमिति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। आगामिकर्मापि ज्ञानेन नश्यति, किञ्च आगामिकर्मणां नलिनीदलगतजलवज्ज्ञानिनां सम्बन्धो नास्ति॥

अर्थः--जब यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ तब असंख्य जन्मों के इकट्ठे किये हुए जो संचित कर्म हैं उनका नाश हो जाता है, और ज्ञानी पुरुष जो आगामी कर्म करता है उसका जो फल सुख दुःख उसे नहीं भोगना पड़ता। क्योंकि आत्म-ज्ञानी कर्मों को करता हुआ उनके फल स्वर्ग-नरक का आनन्द तथा दुःख की इच्छा नहीं करता इस लिये उसे आगामी कर्मों का भोग नहीं भोगना पड़ता। तथा यों समझो कि जिस प्रकार कमलिनी के पत्ते पर जल स्थित होने पर भी पत्ते को जल का असर नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी के देह से पुण्य वा पाप कर्म तो होते हैं परन्तु उनका ज्ञानी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि ज्ञानी अपने स्वरूप को इस देह से भिन्न मानता है। इसी कारण ज्ञानी को

होने वाले कर्म स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होने पर भी सांसारिक कर्म उसे छू नहीं सकते। उसी प्रकार ज्ञानी को भी कर्म स्पर्श नहीं करते हैं।

परन्तु ज्ञानी के देह से कर्म होते हैं उनका फल उन्हें नहीं भोगना पड़ता है यह हमने माना, परन्तु किये हुये कर्म तो नष्ट नहीं होते, उन्हें भोगेगा कौन ? यह एक और सुनने की इच्छा है ?

किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति भजन्ति अर्चयन्ति तान् प्रति ज्ञानिकृतमागामिपुण्यं गच्छति। ये ज्ञानिनं निन्दन्ति द्विषन्ति दुःखप्रदानं कुर्वन्ति तान् प्रति ज्ञानिकृतं सर्वमागामि क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं तद्गच्छति ॥

अर्थः—जो (माया में फँसे) संसारी पुरुष हैं वे जो ज्ञानी की प्रशंसा करते हैं, अथवा सेवा करते हैं तथा सत्कार करते हैं, उनको ज्ञानी का किया हुआ आगामी पुण्य प्राप्त होता है। और जो मनुष्य ज्ञानी की निन्दा करता है तथा द्वेष करता है, तथा ज्ञानी को दुःख देता है उसे ज्ञानी के किये हुये आगामी पाप-रूपी कर्म प्राप्त होते हैं क्योंकि ज्ञानी का शरीर जब तक इस संसार में रहता है तब तक पुण्य तथा पाप जरूर होते रहते हैं। परन्तु उनका फल ज्ञानी को भोगना नहीं पड़ता, कारण ज्ञानी का जो कुछ आगामी पुण्य होता है वह ज्ञानी के भक्त प्राप्त करते हैं। और जो पाप होता है वह ज्ञानी से शत्रु

भाव रखने वालों को प्राप्त होता है। वेद में भी कहा है कि "सुहृदः पुण्य-कृत्यान्, द्विषन्तः पापकृत्यान्, गृह्णन्ति" अर्थ—मित्र पुण्य कर्मों को, शत्रु पाप कर्मों को ग्रहण करता है। इस कारण ज्ञानी को भविष्य में होने वाले कर्मों का भोग भोगना नहीं पड़ता। इस कारण ज्ञानी बनो, अज्ञान के पर्दे को हटाकर देखो तो ईश्वर के दर्शन प्राप्त होंगे।

यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ईश्वर दर्शन के मार्गों को बता कर अब विश्राम लेना चाहता है और सिद्धान्त कहता है कि अगर तुम्हें ईश्वर के दर्शन की अभिलाषा है तो इस मार्ग को तय करो फिर आपको दर्शन में कुछ भी बाधा न होगी और इसी ज्ञान को मुख्य बताते हुए स्मृति में कहा है कि—

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः॥

अर्थः—प्रारब्ध कर्मों के समाप्त होने के बाद आत्मज्ञानी काशीपुरी में शरीर को त्याग करे, अथवा चांडाल के गृह में शरीर का त्याग करे, उसके लिये स्थान भेद का फल लागू नहीं होता, क्योंकि मुक्त वही होता है जिसने कि विषय भोगों की इच्छा त्याग दी है ऐसा वैराग्यवान आत्मज्ञानी पुरुष मुक्त ही है। यानी ज्ञानी का देहपात कहीं हो, किसी हालत में हो, मगर वह तो मुक्त छुटकारा प्रथम ही हो चुका था जब कि वह अपने इस देह का साक्षी समझ कर निवास करता था।

अच्छा, अब ग्रन्थ समाप्ति होते देख, आप लोगों से दो शब्द और कहना चाहता हूँ कि जहाँ तक हो सके निरन्तर सत्य बोलने की आदत डालें तथा भक्ति मार्ग में मन लगाते हुये इन नियमों का निरन्तर अभ्यास करें तो समय पाकर पूर्ण ज्ञान द्वारा ईश्वर का दर्शन होगा। अब मुझे चाहिये कि बिदाई के मौके पर आपको एक और गायन सुनाऊँ—

गाना

जग के अधार स्वामी, सब ठौर तुम्हीं हो।
तुमसे है सारी दुनिया, सब-रूप तुम्हीं हो ॥१॥ जगके०

भूले हैं तेरी छाया, मन मोह क्यों फँसाया।
लेना उबार स्वामी, सब ठौर तुम्हीं हो ॥२॥ जगके०

हम ढूँढ़ते हैं तुमको, तुम छिपते जा रहे हो।
है भय तुम्हें तो किसका ? सब ठौर तुम्हीं हो ॥३॥ जगके०

जाने न रूप तेरा, क्योंकर के गायें गाथा।
आकार हीन स्वामी, सब ठौर तुम्हीं हो ॥४॥ जगके०

जब दिल न माने मेरा, मन्दिर में ढूँढ़ता हूँ।
देना दरश "विहारी"—सब ठौर तुम्हीं हो ॥५॥ जगके०

इसी प्रकार के गायनों की एक पुस्तक लिखी गई है वह भी आप लोगों के कर-कमलों में भेंट करूँगा। समय का इन्तजार करें। तथा अब आपसे बिदाई चाहता हूँ। ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

इति जयपुरराज्यान्तर्गत—नवलगढ़-निवासि-काशीस्थ—
श्रीचन्द्रमहाविद्यालय-ज्यौतिषसामुद्रिकशास्त्राध्यापक-
पं० श्रीबैजनाथशर्मकृत-सोदाहरणभाषाटीकया
समलंकृतस्तत्त्वबोधः समाप्तः।

—:❀:—

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी।